15,17 नवम्बर 2006
जिनवाणी, 210

कायोत्सर्ग : एक विवेचन

श्री विमल कुमार चोरडिया

कायोत्सर्ग एक महती साधना है जो कर्म-निर्जरा के साथ केवलज्ञान एवं मुक्ति की प्राप्ति सहायक है। कायोत्सर्ग के प्रयोजन, स्वरूप, कायोत्सर्ग मुद्रा, कायोत्सर्ग के दोष, कायोत्सर्ग के लाभ आदि पर पूर्व सांसद श्री चोरडिया जी ने सम्यक् प्रकाश डाला है। -सम्पादक

कायोत्सर्ग का सीधा अर्थ है, काया का उत्सर्ग अर्थात् त्याग।

अध्यात्म की अपेक्षा से देहत्याग का आशय देह के प्रति जो अनुराग है,देहाध्यास है,उसका परित्याग करना। इस देहाध्यास का त्याग करने के लक्ष्य से निम्नलिखित हेतुओं से कायोत्सर्ग किया जाता है :-

१. रास्ते में चलने-फिरने आदि से जो विराधना होती है उससे लगने वाले अतिचार से निवृत्त होने के लिए, उस पापकर्म को नीरस करने के लिए (इरियावहियं सूत्र के अनुसार) तथा तस्सउत्तरी सूत्र के अनुसार-

२. उत्तरीकरणेणं- पाप मल लगने से आत्मा मलिन है। आत्मा की विशेष शुद्धि के लिए, उसको अधिक निर्मल बनाने के लिए, उस पर अच्छे संस्कार डालकर उसको उत्तरोत्तर उन्नत बनाने के लिए।

३. पायच्छित्तकरणेणं- प्रायश्चित्त करने के लिए, पाप का छेद-विच्छेद करने के लिए, आत्मा को शुद्ध बनाने के लिए।

४. विसोहिकरणेणं- विशोधिकरण के लिए, आत्मा के परिणामों की विशेष शुद्धि करने के लिए। आत्मा के अशुभ व अशुद्ध अध्यवसायों के निवारण के लिए।

५. विसल्लीकरणेणं- विशल्यीकरण, आत्मा को माया शल्य, निदान शल्य एवं मिथ्यात्व शल्य से रहित बनाने के लिए कायोत्सर्ग करते हैं।

६. अरिहंत प्रभु एवं श्रुत धर्म के वन्दन, पूजन , सत्कार, सम्मान के निमित्त; बोधि लाभ एवं मोक्ष प्राप्ति के लिए- वड्ढमाणीए=बढ़ती हुई- १. सद्धाए=श्रद्धा से, २. मेहाए=बुद्धि से ३. धिईए=धृति से= विशेष प्रीति से, ४. धारणाए=धारणा से=स्मृति से ५. अणुप्पेहाए=अनुप्रेक्षा से=चिन्तन से कायोत्सर्ग करते हैं। ये कायोत्सर्ग भावधारा की शुद्धि के लिए आवश्यक हैं।

७. इनके अतिरिक्त जो देव शासन की सेवा-शुश्रूषा करने वाले हैं, शान्ति देने वाले हैं; सम्यक्त्वी जीवों को समाधि पहुँचाने वाले हैं उनकी आराधना के लिए, दोषों के परिहार के लिए, क्षुद्र उपद्रव के परिहार के लिए, तीर्थ-उन्नति, गुरुवन्दन आदि के लिए भी कायोत्सर्ग किए जाते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुख्यतः कायोत्सर्ग जिनमुद्रा में होना चाहिए। उसके लिए उल्लेख है-

चतुरङ्गुलमग्रतः पादयोरन्तरं किंचिन्न्यूनं च पृष्ठतः।
कृत्वा समपादकायोत्सर्गेण जिनमुद्रा।।

दोनों पाँवों के बीच चार अंगुल और पीछे की ओर कुछ कम अन्तर रखकर कायोत्सर्ग करना जिनमुद्रा कहलाती है।

प्रलम्बितभुजद्वन्द्वमूर्ध्वस्थस्वासितस्य वा।
स्थानं कायानपेक्षं यत् कायोत्सर्गः स कीर्तितः।।

खड़े होकर दो लटकती भुजाएँ रखकर अथवा बैठकर शरीर की अपेक्षा आसक्ति से रहित रहना कायोत्सर्ग है।

देवसिरसयणियमादिसु, जहुत्तमाणेण उत्तकालम्हि।
जिणगुण-चिंतण-जुत्तो, काउसग्गो तणुविसग्गो।।

दैवसिक प्रतिक्रमण आदि शास्त्रोक्त नियमों के अनुसार सत्ताईस श्वासोच्छ्वास तथा उपयुक्त काल तक जिनेन्द्र भगवान के गुणों का चिन्तन करते हुए शरीर का ममत्व त्याग देना, कायोत्सर्ग नामक आवश्यक है।

जे केइ उवसग्गा, देवमाणुस-तिरिक्खऽचेदणिया।
ते सव्वे अधिआसे, काउसग्गे ठिदो संतो।।

कायोत्सर्ग में स्थित सन्त देवकृत, मनुष्कृत तिर्यंचकृत तथा अचेतन कृत होने वाले समस्त उपसर्गो को समभावपूर्वक सहन करता है।

श्रुतकेवली श्री भद्रबाहु स्वामी ने आवश्यक निर्युक्ति में बताया है-

वासीचन्दनकप्पो, जो मरणे जीविए य सममणो।
देहे य अपडिबद्धो, काउसग्गं हवइ तस्स।।

चाहे कोई भक्ति भाव से चन्दन लगाये, चाहे कोई द्वेष वश बसोले से छीले, चाहे जीवन रहे, चाहे इसी क्षण मृत्यु हो जावे; परन्तु जो व्यक्ति देह में आसक्ति नहीं रखता, वस्तुतः उसी का कायोत्सर्ग समीचीन है।

युवाचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार पैर से सिर तक शरीर को छोटे-छोटे हिस्सों में बाँटकर, प्रत्येक भाग पर चित्त को केन्द्रित कर स्वतः सूचन (auto suggestion) के द्वारा शिथिलता का सुझाव देकर पूरे शरीर को शिथिल करना है। पूरे ध्यान काल तक इस कायोत्सर्ग की मुद्रा को बनाये रखना है तथा शरीर को अधिक से अधिक स्थिर और निश्चल रखने का अभ्यास करना है। यह प्रेक्षा ध्यान की अपेक्षा से कायोत्सर्ग है।

विपश्यना पद्धति के अनुसार- 'सम्मा वायामो, सम्मासति, सम्मा समाधि' बताये हैं। सम्मा वायामो का अर्थ है, सम्यक् व्यायाम। मन का विशुद्धीकरण करने के लिए मन का व्यायाम। इसके लिए मन का निरीक्षण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करना, मन की बुराई निकालना, बुराई को आने न देना, अच्छाई को कायम रखने का प्रयत्न करना, उसका संवर्द्धन करना, जो सद्गुण अपने में नहीं हैं, उन्हें प्राप्त करना, यह सम्यक् व्यायाम है। इस प्रकार स्थूल-स्थूल बातें पहले जानना अर्थात् मोटा-मोटा श्वास का नाक से आना-जाना जानना, फिर जरा सूक्ष्म श्वास जानना, फिर श्वास का छूना जानना, इसके बाद नाक के त्रिकोण पर ध्यान केन्द्रित कर वहाँ क्या हो रहा है, जानना। श्वास के स्पर्श की कुछ न कुछ प्रतिक्रिया हो रही है, यह वर्तमान की सच्चाई है। धीरे-धीरे अन्य सच्चाइयाँ प्रकट होने लगती हैं। ज्यों-ज्यों मन सूक्ष्म होने लगता है, शरीर के अन्दर जो जैविक, रासायनिक, विद्युत चुम्बकीय प्रतिक्रियाएँ हो रही हैं उनका अनुभव होने लगता है। जागरूक रहकर वर्तमान की सच्चाई को जानना है। इसके द्वारा हम अनुभूतियों के स्तर पर ज्ञात से अज्ञात क्षेत्र को जानने लगते हैं। इसके बाद 'सम्मा समाधि' =सम्यक् समाधि =चित्त की समाधि होती है।

कायोत्सर्ग में द्रव्य उत्सर्ग और भाव उत्सर्ग आवश्यक है। जब तक द्रव्य और भाव से काया का उत्सर्ग नहीं किया जाता तब तक वह केवल द्रव्य कायोत्सर्ग ही कहलायेगा, औपचारिकता रहेगी।

कायोत्सर्ग की प्रतिज्ञा में, प्रतिज्ञा भंग का दोष न लगे इस हेतु से 'अन्नत्थ ऊससिएणं' सूत्र के अनुसार अपवाद रखें हैं। वे अपवाद हैं-श्वास लेना, श्वास छोड़ना, खाँसी आना, छींक आना, जम्हाई आना, डकार आना, अपान वायु छूटना, चक्कर आना, मूर्च्छा आना, सूक्ष्म अंगों का संचार होना, सूक्ष्म कफ का संचार तथा सूक्ष्म दृष्टि का संचार होना आदि।

उपर्युक्त अपवाद होने पर भी निम्नलिखित दोष न लग जायें, इसकी सावधानी आवश्यक है। १. घोड़क दोष- एक पैर टेढ़ा या ऊँचा रखना। २. लता दोष- लता की तरह शरीर कम्पित होना। ३. स्तंभादिक दोष-खंभे या दीवार का सहारा लेना। ४. माल दोष- छत का मस्तक से स्पर्श करना। ५. उद्धि दोष- दोनों पैर जोड़ देना। ६. निगड दोष- पैर अधिक चौड़े रखना। ७. शबरी दोष- भीलनी की तरह गुह्यांग पर हाथ रखना। ८. खलिन दोष- लगाम की तरह हाथ में रजोहरण या चरवला पकड़ना। ९. वधूदोष- बहू की तरह मस्तक नीचे रखना। १०. लंबुत्तर दोष- चोलपट्टा या धोती को नाभि से चार अंगुल से अधिक ऊँचा पहनना। ११. स्तन दोष- स्त्री की तरह स्तन पर कपड़ा ढाँकना। १२. संयती दोष- मस्तक को व अंगों को साध्वी या स्त्री की तरह सम्पूर्ण ढँकना। १३. भ्रमितांगुलि दोष- मंत्र गिनते-गिनते अंगुली अथवा नेत्र की भवों को घुमाना। १४. कौआ दोष- कौए की तरह इधर-उधर देखना। १५. कपित्थ दोष- धोती के मलिन होने के भय से, धोती को पटली को गोल बनाकर पैरों के बीच में दबाकर रखना। १६. सिरकम्प दोष- मस्तक हिलाते रहना। १७. मूक दोष- गूंगे की तरह हूँ-हूँ करना। १८. वारुणी दोष- जैसे शराब पकती है और बुड़-बुड़ की आवाज आती है वैसी आवाज करना। १९. प्रेक्षा दोष- बन्दर की तरह ऊपर-नीचे दृष्टि घुमाना आदि।

लंबुत्तर, स्तन व संयती दोष साध्वीजी को नहीं लगते, कारण उन्हें अपने सभी अंग वस्त्र से ढके रखना चाहिये। श्राविकाओं के लिए उपर्युक्त तीन एवं वधू दोष नहीं लगते, क्योंकि लज्जा स्त्री का भूषण होने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से उन्हें मस्तक व दृष्टि नीची रखनी चाहिये।

मानव के १६ संज्ञाएँ हैं- १. आहार २. भय ३. मैथुन ४. परिग्रह ५. क्रोध ६. मान ७. माया ८. लोभ ९. ओघ १०. लोक ११. सुख १२. दुःख १३. मोह १४. विचिकित्सा १५. शोक और १६. धर्म।

इन संज्ञाओं के कारण मानव के आंकांक्षा, मिथ्या दृष्टिकोण, प्रमाद, कषाय, मन-वचन-काया की चंचलता ये आन्तरिक संक्लेश हैं। इसके परिणामस्वरूप मानव को ईर्ष्या, प्रतिस्पर्धा, घृणा, भय का भाव, सत्ता और सम्पत्ति के लिए संघर्ष, लालसाएँ आदि कुविकल्प व भाव होते हैं। इनका दबाव मनुष्य पर सतत बना रहता है। इस प्रकार के दबाव=तनाव=Tension के कारण मनुष्य के शरीर के- १. अवचेतक (हाइपोथेलेमस) २. पीयूष ग्रन्थि (Pitutary gland) ३. अधिवृक्क (एड्रीनल ग्लेण्डस्), ४. स्वायत्त नाड़ी संस्थान के अनुकंपी विभाग आदि पर कुप्रभाव पड़ता है, जिसके परिणाम में १. पाचन क्रिया मंद होते-होते धीरे-धीरे स्थगित होजाती है। २. लार ग्रन्थियों के कार्य स्थगन से मुँह सूखने लगता है। ३. चयापचय की क्रिया में अव्यवस्था होने लगती है। ४. यकृत द्वारा संगृहीत शर्करा अतिरिक्त रूप से रक्त-प्रवाह में छोड़ी जाती है मधुमेह की बीमारी का हेतु बनती है। ५. श्वास तेजी से चलने लगता है, हांपनी चढ़ती है। ६. हृदय की धड़कन बढ़ जाती है ७. रक्तचाप बढ़ जाता है... आदि आदि। इसके परिणामस्वरूप नींद न आना, रक्तचाप ऊँचा-नीचा होना, हृदयाघात, पक्षाघात, हेमरेज, रक्त अल्पता, वायु-विकार आदि हो जाते हैं। धीरे-धीरे व्यक्ति संकल्पविहीन, इन्द्रियों का दास, चंचल वृत्ति वाला एवं अस्थिर हो जाता है। उसकी बीमारियों का सामना करने की अवरोधक शक्ति कम हो जाती है। उसकी स्वयं की और परिवार की शांति भंग हो जाती है। उसकी शारीरिक एवं मानसिक स्थिति खराब हो जाती है। उसकी भावधारा विकृत हो जाती है। वह मोक्षमार्ग से विपरीत दिशा का राही हो जाता है।

जब कायोत्सर्ग पुष्ट हो जाता है, तब शरीर और आत्मा के भेद का स्पष्ट अनुभव होने लगता है। कायोत्सर्ग भेदविज्ञान की साधना है। इस भेदविज्ञान से आत्मोपलब्धि की यात्रा का प्रारम्भ हो जाता है।

हमारे मन में मूर्च्छा, मोह, राग-द्वेष, वासना, कषाय और अनगिनत बुराइयों का मेल है। उनको हटाना है तो कायोत्सर्ग उसके लिए सर्वोत्कृष्ट उपाय है।

समणसुत्त के अनुसार कायोत्सर्ग से निम्नलिखित स्थिति बनती है-

देह मइ जड्डइ सुद्धी, सुह दुक्ख तितिक्खया अणुप्पेहा।
झायइ य सुह झाणं, एगग्गो काउसग्गम्मि।। -समणसुत्तं, ४८१

कायोत्सर्ग करने से निम्नलिखित लाभ प्राप्त होते हैं-

१. **'देहजाड्यशुद्धि-** श्लेष्म आदि दोषों के क्षीण होने से देह की जड़ता नष्ट होती है।

२. **मतिजाड्यशुद्धि-** जागरूकता के कारण बुद्धि की जड़ता नष्ट होती है।

३. **सुख-दुःख तितिक्षा-** सुख-दुःख सहने की शक्ति का विकास होता है।

४. **अनुप्रेक्षा-** भावनाओं के लिए समुचित अवसर का लाभ होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. एकाग्रता- शुभध्यान के लिए चित्त की एकाग्रता प्राप्त होती है।

इस प्रकार कायोत्सर्ग से मानसिक, स्नायविक, भावात्मक तनाव समाप्त हो जाते हैं, ममत्व का विसर्जन हो जाता है, सभी नाड़ी तंत्रीय कोशिकाएँ प्राण-शक्ति से अनुप्राणित होती हैं। तनाव के कारण होने वाले ऊपर वर्णित दोष व बीमारियाँ उत्पन्न नहीं होती और यदि वे दोष और बीमारियाँ हों तो धीरे-धीरे समाप्त हो जाती हैं।

दीर्घकालीन अशान्त निद्रा की अपेक्षा स्वल्पकालीन कायोत्सर्ग व्यक्ति को अधिक स्फूर्ति और शक्ति प्रदान करता है। जिन्हें उच्च रक्तचाप आदि के कारण हृदय रोग होने की संभावना रहती है, वे कायोत्सर्ग के नियमित अभ्यास से अपनी प्रतिकार करने की शक्ति को बढ़ाकर इस खतरे से बच सकते हैं।

कायोत्सर्ग भेदविज्ञान की साधना है। अभ्यास करते-करते जब कायोत्सर्ग पुष्ट हो जाता है तब शरीर और आत्मा का भेद स्पष्ट अनुभव होने लगता है।

कायोत्सर्ग आत्मा तक पहुँचने का द्वार है। स्थूल से सूक्ष्म की यात्रा करने का योग है। श्वास स्थूल है और प्राण सूक्ष्म है। प्राण पर नियन्त्रण होने से अनासक्ति, अपरिग्रहवृत्ति, ब्रह्मचर्य आदि व्रत सहज में सध जाते हैं और दुष्टवृत्तियों में परिवर्तन आ जाता है। घृणा नष्ट हो जाती है। क्रोध की अग्नि शान्त हो जाती है और क्षमा की वर्षा होने लगती है।

श्वास के शिथिल होने से शरीर निष्क्रिय बन जाता है। प्राण शान्त हो जाते हैं और मन निर्विचार हो जाता है। श्वास की निष्क्रियता ही मन की शान्ति और समाधि है। धीमी श्वास धैर्य की निशानी है।

कायोत्सर्ग से प्रज्ञा का जागरण हो जाता है। बुद्धि और प्रज्ञा में इतना ही अन्तर है कि बुद्धि चुनाव करती है कि यह प्रिय है, यह अप्रिय है; किन्तु प्रज्ञा में चुनाव समाप्त हो जाता है। उसके सामने प्रियता और अप्रियता का प्रश्न ही नहीं उठता । उसके सामने समता ही प्रतिष्ठित होती है। जब प्रज्ञा जागती है तो जीवन में समता स्वतः प्रकट होती है और लाभ-अलाभ, सुख-दुःख, निंदा-प्रशंसा, जीवन-मरण आदि द्वन्द्वों में सम रहने की क्षमता विकसित होती है।

इस मुद्रा व भाव के अभ्यास से आत्मरमणता क्रमशः इतनी बढ़ जाती है कि एक दिन साधक शैलेशी अवस्था प्राप्त कर केवलज्ञानी बनकर मोक्ष सुख प्राप्त कर सकता है। शास्त्रों में इसके उदाहरण विद्यमान हैं। कायोत्सर्ग की स्थिति में महावीर स्वामी के कान में कीलें ठोके जाने पर, संगम द्वारा उपसर्ग करने पर भी वे अविचल रहे। गजसुकुमाल मुनि के सिर पर दहकते अंगारे रखे गए, अवन्तिसुकुमाल का हिंसक पशुओं ने भक्षण किया, किन्तु वे अविचल रहे।

कायोत्सर्ग उसी का सार्थक है जो धर्मध्यान और शुक्लध्यान में किया जाए। कायोत्सर्ग करने वालों को शत-शत वन्दन, हार्दिक अभिनन्दन और मन-वचन-काया से उनका अनुमोदन।

-पूर्व सांसद एवं विधायक

भानपुरा-४५८७७५, जिला-मन्दसौर (म.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org